Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233

Year-1 | Issue-6 | March-April 2013

अथर्ववेद की एक्य-भावना का विश्वशांति में प्रदान *

भूमिकाः

समग्र विश्व का प्रचीनतम साहित्य वेद है । विविध ऋषिओं को वेदमन्त्रो का समाधिस्थ स्थिति मां दर्शन हुआ था । अतएव ऋषिओं वेद मन्त्रों के कर्ता नहीं, परन्तु द्रष्ठा है । [1] वेद मानुषी नहीं है । अर्थात् इन की रचना कोई भी व्यक्ति-विशेषने नहीं की है । इसलिये वेद को अपौरुषेय माना गया है । वेद तो स्वयं ईश्वर का सर्जन है । अतः इन को ईश्वर का श्वासोच्छवास माना गया है । [2]

हमारे ऋषि-मुनियों का जीवनमन्त्र था - कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम् । [3] इसलिये सारे विश्व को आर्य बनाने के लिये उन्हों ने कडी महेनत की और वेदों के जरीये विश्वसंस्कृति का निर्माण किया। हमारी वैदिक संस्कृति ही विश्वसंस्कृति है, उसका बयान वेदो मां जगह जगह पर नजर आता है । विश्वसंस्कृति के निर्माण के लिये मानव-मानव के बीच में आपसी मेलजोल, सद्-भावना एवं नित्य प्रेमप्रवाह होना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है । मानव-मानव के बीच जब एकता की गाथा रची जायेगी तब विश्वकल्याण होगा, तब विश्व में शांति आयेगी । ऐसा एकतागान वेदो में जगह-जगह पर गाया गया है । चारों वेदो में से विशेषतः अथर्ववेद, मानवीय संवेदनाओं एवं भावनाओं - याचनाओं से आपूर्ण है । कई विद्वज्जन अथर्ववेद को अर्वाचीन मानते हैं । पर हमारे परम तपस्वी, तेजमूर्ति एवं आजीवन वेदोपासक महर्षि दयानन्दजी ने अथर्ववेद की भी प्राचीनता अपने निझी ढंग से अपने ग्रन्थों में सिद्ध की है । [4] अतएव अथर्ववेद भी प्राचीन है, इतना ही नहीं, चारों वेदो में से मानवीय भावनाओं से जुडा हुआ विशिष्ट वेद है । इस में मानव-मानव के आपसी द्वेष और ईर्ष्याभाव का परिहार कर के परस्पर ऐक्य निर्माण की प्रतिष्ठा की गई है । ऐसे जो कुछ ऐक्यविषयक विचार अथर्ववेद में है, इन में से कुछ प्रमुख विचारों के प्रति अंगुलिनिर्देश करने का यह लेख का एक विनम्र प्रयत्न है ।

अथर्ववेद के कुछ ऐक्यविषयक प्रमुख विचारः

मानव-मानव के बीच में परस्पर ऐक्य की प्रस्थापना के लिये प्रथम (1) पारिवारिक ऐक्य, (2) सामाजिक ऐक्य और (3) राष्ट्रीय ऐक्य प्रस्थापित करना पडेगा । अथर्ववेद में भी इसके बारे में कुछ कहा गया है । जैसे कि -
(1) परिवार के सभी सभ्यों में आपस में परस्पर प्रेमभाव होना चाहिए । इस सन्दर्भ में अथर्ववेद कहता है कि -

सहृदयं सांमनस्यमविद्येषं कृणोमि वः
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या ।। [5]

अर्थात् जैसे 'गाय अपने बछडे को चाहती है, प्रेम करती है, इस तरहा परिवार में परस्पर के साथ प्रेम से रहना चाहिए ।' कई जन्मों के पुण्योदय से सुपुत्रप्राप्ति कुलदीपक जैसे पुत्र की प्राप्ति होती है ।

(2) कोई भी परिवार की अपनी श्रेष्ठ संपत्ति केवल संतान ही होती है । "सम्यक् तनोति इति सन्तानः" ऐसा कहा गया है । [6] भारतीय संस्कृति में पुरुष और स्त्री की पाणिग्रहणविधि केवल पुत्र या पुत्रों की उत्पत्ति के लिये ही होती है । कोई भी भारतीय व्यक्ति वह चाहे पुरुष हो या स्त्री अपने वंशविस्तार के लिये पुत्रप्राप्ति की कामना अवश्य रखता है । हमारे पौराणिक काल में भी दशरथ राजा जैसे कई राजाओंने पुत्रप्राप्ति के लिये "पुत्रकामेष्टि यज्ञ" करवाये थे । भारतीय संस्कृति में 'पुत्र' शब्द का अपना निजी महत्त्व है - "पुं नाम नरकम् त्रायते इति पुत्रः" ऐसा कहा गया है । मृत्यु के बाद (अपनी) सद्-गति पुत्र से की गई श्राद्धविधि से ही होती है, ऐसी भारतीयों की शास्त्र और धर्ममूलक पारंपरिक मान्यता है । ऐसी शास्त्रसंमत मान्यता भी हरकोई भारतीय के दिल में पहले से अपना स्थान ले चूकी है । अतएव भारतीय संस्कृति में सुपुत्रप्राप्ति का अपना अनूठा महत्त्व है । अथर्ववेद भी कहता है -
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः । [7] अर्थात् "पुत्र पिता के अनुकूल कर्मों करनेवाला (हो) और माता के प्रति समान मनवाला होना चाहिए ।"

(3) गृहस्थ धर्म का मूलाधार पति और पत्नी है । ये दोनों में परस्पर आपसी सद्-भाव रहना चाहिये । ये दोनों में से घर को चलाने की बडी जिम्मेदारी पत्नी को उठानी पडती है । उसे बच्चों की देखभाल और सारा घर का ध्यान भी रखना पडता है । श्वसुरपक्ष के सभी लोगों के मन को अनुकूल व्यवहार करना पडता है । इसलिये पत्नी को घर की लक्ष्मी कही गई है । अच्छी पत्नी से ही गृस्थ धर्म का यथार्थ पालन पति कर सकता है । तथैव परिवार में सुख और शांति बने रहेगें । इस तरहा अच्छी तरह से गृहस्थी चलाने के लिये सुपत्नी का होना अनिवार्य बन जाता है । अथर्ववेद भी कहता है -
जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् ।। [8] - "पत्नी पति के लिये माधुर्ययुक्त, और सुख-शांति प्रदाता बानी बोले ।"

(4) परिवार के अन्य सदस्यों के लिये भी अथर्ववेद कहता है -

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।। [9]

"भाई (अपने दूसरे) भाई का और बहन (अपनी दूसरी) बहन का द्वेष न करे । सब एकमति बनकर, अपने अपने कर्म कर कर, उत्तम रीति से कल्याण कारी बानी बोलो ।" इस तरहा परिवार में सांमनस्यम् सधाना चाहिए ऐसा अथर्ववेद का कहना है । क्यूं कि व्यक्ति (वह चाहे पुरुष हो या स्त्री) जब तक अपने स्वजनों को प्यार नहीं कर सकता तो फिर समग्र राष्ट्र को और विश्व को कैसे प्यार कर सकेगा ? उसका व्यवहार औरों के साथ प्यारभरा हो, ऐसी उम्मीद हम कैसे रख सकेगें ? इसलिये प्यार का सद्-भाव का, सदाचरण का पहला पाठ हरकोई व्यक्ति को पहले अपने परिवार में ही पढना पडेगा । परिवार ही हमारी प्रथम पाठशाला है ।

(5) अथर्ववेद हमें सामाजिक व्यवहार भी शीखाता है । वह कहता है - "वृद्धों का सन्मान करो, अपने अपने कर्तव्य में मन को जोड दो । आपस में कभी भी अलगाव न हो, सब साथ मिलकर गृहस्थ के कार्य करो । (जैसे) गाडे के धुरे से आगे जाते हुए बैलों की तरहा सब मिलके चलो । एकदूसरे के प्रति सुंदर और मधुर वचन बोलो । एकदूसरे के घर पर आनेजाने का व्यवहार रखो । परस्पर (विचारों में) साथ चलो । मैं आप सब को समान मनवालें बनाता हुं ।" [10] अर्थात् अथर्ववेद का कहना है की परिवार में जैसे हम सद्-भावना से रहते है इस तरहा समाज में भी रहना चाहिए . हमारा सामाजिक व्यवहार भी प्यारभरा ही होना चाहिए । विशेषतः जो व्यक्ति परिवार और अपने समाज में प्यारभरा व्यवहार करता है वह सारे राष्ट्र में और बाद में सारे विश्व में भी प्यारभरा व्यवहार करेगा, कर सकेगा ।

परिवार में तो एकदूसरे से लोग खून के रिश्ते से जुडे होते है, इसलिये परिवार में हरकोई व्यक्ति को अनुकूलन साधना ही पडता है । व्यक्ति समाज में ही पलता है, बडा होता है । इसलिये समाजऋण को ध्यान में रखकर सज्जन लोग प्यारभरे व्यवहार से समाज में पेश आते है । पर परिवार और समाज की तरहा व्यक्ति राष्ट्र से सीधा जुडा हुआ नहीं है । इसलिये राष्ट्र के प्रश्नों और तकलीफों से वह बेखबर रहता है । क्यूं कि राष्ट्र से उसका कोई सीधा संपर्क और सम्बन्ध नहीं है ।

जिस व्यक्ति से हमारा लगाव है, महत्त्व है खून का रिश्ता है और जिस से हमारी जानपहचान बन गई है बस इस से ही हमारा अपनापन होता है । पर जिस से हमारी कोई जानपहचान नहीं है, उसकी मौत की खबर भी हमें चलित नहीं करती है । पर दयानन्दजी, विवेकानन्दजी जैसे सच्चे संन्यासी एवं गांधीजी जैसे महापुरुष तो समग्र विश्व को प्यार करते थे । उन्हें अपना-पराया ऐसा भेदभाव नहीं था । इसलिये ये महापुरुषें सारे विश्व में से कोई भी व्यक्ति की पीडा वा नुकसान अपने कंधे उठा लेते थे । इस तरहा जो हमदर्द है, जो विश्वकल्याण और शांति की कामना की ठान लेकर बैठे है, वे लोग ही विश्वशांति के लिये चिंता और चिंतन करते है । अन्य लोग तो "खादत मोदत पिबत भोगत" में ही मस्त रहते है । पर ऐसा जीवन, इन्सान का नहीं एक पशु का ही जीवन हो सकता है । क्यूं कि पशु को विवेक, विचार और वर्तन में सभ्यता की आवश्यकता का ख्याल नहीं है, पर इन्सान तो वो है जो किसी के काम आ सके । इसलिये ही कहा गया है कि - "हम न सोचे हमें क्या मिला है, हम ये सोचे किया क्या है अर्पण ?" बस यही सच्चे इन्सान की परिचायक पंक्ति है ।

(6) आज मानव परस्पर भयभीत है । उसकी भीति को हटाने के लिये अहिंसक वृत्ति का समर्थन और पालन आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है । जब भय टल जायेगा तब विश्वास आयेगा ना ?..!! इसलिये मानव-मानव के बीच में सब से पहले "हिंसा विरोध की भावना" जगानी पडेगी । अथर्ववेद में भी यह कामना की गई है कि हम सब प्राणी न तो कभी हिंसित ही होंगे और न कभी हिंसक बनेगें । [11]

(7) मानव-मानव की एकता के बीच में द्वेष और ईर्ष्या की भावना दीवार बनके खडी है । अथर्ववेद में ये दोनों वृत्ति से हमें बचाने की कामना की गई है ।

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।

एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ।। [12]

"अग्नि के समान (दहतः) जलाता (हुआ) वह इर्ष्यालु का यह इर्ष्याभाव तथा इसके अलावा जलाता (दावस्य) प्रचंड अग्नि जैसा (एतस्य) उस के इर्ष्याभाव को, (शमय) तु शान्त कर । (उद्ना अग्निम् इव) जैसे जल से अग्नि को शांत किया जाता है ।"
हमारे में रहे द्वेषभाव को दूर करने के लिये अथर्ववेद कामना करता है कि - 'जो हम से द्वेष रखता हो अथवा हम जिससे द्वेष रखते है, उसे भी (हे चन्द्रात्मन् !) तु प्राण-जीवन दे । वह भी भले-फूले और हम भी फले-फूले । हम सब गाय, बैल, घोडा, पुत्र, पौत्र, पशु, घर एवं धन आदि से भरपूर हो ।' [13]

(8) मानव-मानव के बीच में जो भेदभाव है उसे हटाना पडेगा । अथर्ववेद भी कहता है -

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च, नमः पूर्वजाय चापरजाय च ।
नमो मध्यमाय चाप्रगल्भाय च, नमो जघन्याय च बुदन्याय च ।। [14]

अर्थात् सबको प्रेमभाव से नमस्कार करना चाहिये । सब को यथार्थ मान देना चाहिये । श्रेष्ठ, उदार और सज्जन प्रकृति के इन्सान हरहमेश सबका आदर और प्यारभरे शब्दों से सबका अभिवादन करते है । ऐसे प्यारभरे शब्दों से उंच-नीच, स्वामी-नौकर, अमीर-गरीब, विद्वान-निरक्षर जैसे कई द्वंद्व मीट जाते हैं । इसलिये अथर्ववेद में स्वभाव से मधुर बनने की कामना बताई गई है । जैसे की-

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदोर्मि मधुमद् भूयासं मधुसंदेशः ।। [15]

अर्थात् जिस के व्यवहार, क्रिया और वाचा में मधुरता हो, उसे ही सब प्रेम करते है । संसार में ऐसे लोग ही कुछ शुभ कार्य कर जाते है ।

(9) "संघे शक्तिः कलौ युगे" ऐसा कहा जाता है । अर्थात् कलियुगमें संगठन में ही शक्ति है । सज्जन, उदारचरित और परोपकारी लोगों का संगठन बनना ही चाहिये । ऐसी संगठनशक्ति की समज हमें ऋग्वेद के 10-161 संज्ञानसूक्त से मिलती है । संगठित लोगों में एकता की भावना उस सूक्त में जताई गई है । संगठन में भी हमें मिलजुलकर रहना चाहिये । अथर्ववेद में संगठनशक्ति का यशोगान "सांमनस्यम् सूक्त" 3-30 में दृग्गोचर होता है । जैसे की -

सहृदयं सांमनस्यम विद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाधन्या ।। [16]

अर्थात् हमें पारस्परिक वैरभाव को छोडकर सहृदयी, मनस्वी एवं उत्तम स्वभाववाला बनना पडेगा । एकदूसरे को प्यारभरी नजर से देखना चाहिये, तब ही हम सुखी हो सकेगें ।

(10) अब प्रश्न यह उठता है कि मानव-मानव में एकता की साधना की क्या जरूरत है ? (किस लिये) मानव मानव एक बने ऐसी भावना वेदोंने क्युं जताई है ? ये सारें प्रश्नों का, शंकाओं का बस एक ही उत्तर है - राष्ट्रसुरक्षा । मानव मानव के बीच एकता निर्माण से पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवहार कार्यो में भी एकता नजर आयेगी । सामाजिक एकता का विस्तृत रूप राष्ट्रीय एकता तक पहुंचेगा । आखिर में हम सब लोगों को एक रहकर हमारी राष्ट्र की सुरक्षा भी किसी भी कीमत पर करनी है । अथर्ववेद भी कहता है -

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे, यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा, भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ।। [17]

अर्थात् जिस राष्ट्र का हमारे पूर्वजो ने निर्माण किया है और असुरों से रक्षा की है, उस के निर्माण के लिये हमें त्याग और बलिदान की तैयारी भी रखनी पडेगी ।

(11) राष्ट्रीय एकता के बाद ही विश्वएकता आयेगी । "वसुधैव कुटुम्बकम्" की हमारे ऋषिमुनियों की जो मनीषा थी वह ही विश्वएकता की पहलु थी । हमारे ऋषि-मुनियों का बस एक ही जीवनमन्त्र था - कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम् । विश्व के हरकोई कोने में बसनेवाला "आर्य हो" ऐसी कामना हमारे ऋषि-मुनि रखते थे । जब तक ऐसी वैश्विक एकता सध नहीं जाती तब तक विश्व में शांति कैसे आ सकेगी ? इसलिये "कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्" यह ही विश्वशांति का पैगाम है । विश्व के सभी मनुष्य अपने सारे बंधन छोडकर एक हो जाये ऐसा वैश्विक एकता का अर्थ है ।
हमें पद, प्रतिष्ठा, कीर्ति, सत्ता ये सब चाहिये किस लिये ? अपने भौतिक एवं सामाजिक विकास के लिये, बस हमारी केवल इतनी ही सोच है । पर हमारे ऋषि-मुनि हमें आत्मिक विकास की चोटी पर ले जाना चाहते थे । इसलिये उन्हों ने आत्मोन्नति के लिये विश्वएकता

की कामना की । केवल शारीरिक, आर्थिक, भौतिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास से ही मानवजीवन संपूर्ण नहीं बनता । आध्यात्मिक विकास से ही वह संपूर्ण बनता है । वसुधामाता को प्रार्थना करने से ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना हम बरकरार रख सकते है । इसलिये अथर्ववेद में "पृथिवीसूक्त" रचा गया है । हमारी वैश्विक एकता की कामना इसमें की गई है । इतना ही नहीं अथर्ववेद में ही कहा गया है की -

असम्बाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या औषधीर्च्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथां राध्यतां नः ।। [18]

"जिस भूमि के रहनेवाले मनुष्यों में उंच-नीच वा समता के विषय में असंबोध भाव (अद्वेष भाव) है, जो नाना प्रकार के वीर्यो, बलो और औषधियों का भरणपोषण करती है, वही मातृभूमि हमें फैलने में सहायक हो - हमारे प्रेमप्रदर्शन में सहायक हो ।" अर्थात् मानव मानव के बीच दरारे डालनेवालें जो नाना प्रकार के (जैसे उंच-नीच, अमीर-गरीब, विद्वान-निरक्षर आदि) विरोधी भाव है, जो परस्पर प्रद्वेष-विद्वेष के जनक है, उसे केवल पृथिवीमाता ही मीटा सकती है । क्युं कि ये सब विरोध भाव पृथ्वी पर ही जन्में है । इसलिये ही हमारे ऋषि-मुनियों ने आत्मोन्नति के लिये ये विरोधी भावों को दूर करने के लिये पृथिवीमाता को ही प्रार्थना की है ।

(12) अगर विश्वशांति हम चाहते है तो चारों दिशाओं में से वैर, शत्रुता की भावना भी हटानी पडेगी, मीटानी पडेगी । अथर्ववेद की भी यही कामना है की -

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ।। [19]

"हे इन्द्र! हमें नीचे के भाग से अशत्रुत्व प्राप्त हो, उत्तर से हमें अशत्रुत्व प्राप्त हो. पश्चिम से हमें अशत्रुत्व और पूर्व दिशा से भी हमें अशत्रुत्व अर्थात् शत्रुरहित करो ।" विश्वशांति के लिये हमें आपसी मतभेद, पूर्वग्रह, वैरभाव और परायापन को हटाना पडेगा । सारे विश्व के लोग अगर एकता का यह मन्त्रगान करेगा तो सारा संसार हिलमिल कर रह सकेगा ।

उपसंहारः

कई लोग आज विश्व में शांति कैसे आये इस की चिंता और चिन्तन में लगे है । विश्व का प्राचीनतम साहित्य वेद है इन चारों वेदो में यह कामना जताई गई है । विशेषतः अथर्ववेद तो चारों वेदो में से मानवीय संवेदना और भावनाओं का उद्घाटक है, परिचायक है । मानवीय कामनाओं की पूर्ति का वेद अथर्ववेद है । अथर्ववेद में भी सारे संसार के लोगों में कैसे एकतानिर्माण हो सके इस के बारे में गहन चिन्तन दृष्टिगोचर होता है । ऐसे चिन्तन की कुछ प्रमुख कणिकायें प्रस्तुत लेख में निर्देशित है । ऐसी चिन्तनकणिकाओं का स्वाध्याय और उसके अनुसार आचरण करने से ही सारे विश्व में शांति आ सकेगी, सारे विश्व का कल्याण हो सकेगा ।

पादटीपः

* विश्व-वेद-सम्मेलन, गुरुकुल कंगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड) में दि. 20-22 नवम्बर, 2009 में प्रस्तुत किया हुआ लेख ।

(1) ऋषिदर्शनात् । ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः । निरुक्ते 1-1, निघण्टु और निरुक्त, हिन्दी अनु. एवं सम्पा. डो. लक्ष्मणस्वरूप, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् 1997

(2) एसा कहा गया है कि ईश्वरस्य निःश्वसिताः वेदाः ।

(3) यह मन्त्र से ही हमारे ऋषिओं ने सारे विश्व को एकजुट करने का यत्न किया । इस मन्त्र से ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना ने जन्म लिया ।

(4) देखीये (1) 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका', स्वामी दयानन्द सरस्वती, दर्शनयोग महाविद्यालय, रोजड और सत्यार्थ प्रकाश, आर्य समाज, अहमदाबाद और दयानन्द के अन्य ग्रन्थ

(5) अथर्ववेद संहिता, 3.30.1

(6) "तनु विस्तारे" (तु.उ.से.) । कित (3-3-14) संसतिः स्यात्पंक्तौ गोत्रे पारमार्थे च पौत्रपौत्राणाम् मेदनी 66-168

(7) अथर्ववेद, 3.30.2

(8) अथर्ववेद, 3.30.2

(9) अथर्ववेद, 3.30.3

(10) ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट... संमनसस्कृणोमि ।। अथर्ववेद, 3.30.4

(11) पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्त इह स्मसि ।। अथर्ववेद, 7-9-3

(12) अथर्ववेद, 7-47-1

(13) यो ईऽस्मान् द्येष्टि यं वयं द्यिष्म-स्तस्य त्वं प्राणेना ण्यायस्व । आ वयं प्याशिषीमहि गोभि-रश्वैः प्रजया पुशुभिर्गृहैर्धनेन ।। (अथर्ववेद 7-81-5)

(14) (1) यजुर्वेद संहिता 16-32

(15) (1) अथर्ववेद 1-34-3

(16) (1) ऋग्वेद में भी कहा है - समानी आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।। ऋ. 10-9-4

(2) सहृदयं सांमनस्यम... वत्सं जातमिवाधन्या ।। अथर्ववेद 3-30-1

(17) अथर्ववेद, 12-1-5

(18) अथर्ववेद, 12-1-2

(19) अथर्ववेद, 3-19-3, उत्तरात्-अधरात्, दक्षिणात् । उत्तरात इन तीन शब्दों से "आति" प्रत्यय होकर उक्त रूप पंचमी एकवचन में निष्पन्न होता है ।

अन्य सहायक ग्रन्थ-सूचिः:

(1) "अथर्ववेद-शतक" (गुर्जर अनुवाद सहित) संग्रहकार एवं सम्पादक कमलेशकुमार छ. शास्त्री, प्रकाशक-गुरुदासमल छांगाराम, अहमदाबाद, द्वितीय संस्करण, एप्रिल, 1999 ई.स.

(2) "वेदसौरभ", स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, प्रकाशक-विजयकुमार गोविंदराम हासानंद, दिल्ली, प्रथम संस्करण, एप्रिल, 2005 ई.स.

(3) "वेदों का दिव्य संदेश", श्रीराम शर्मा आचार्य, युगनिर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा, उत्तरप्रदेश

(4) "वैदिक अध्यात्म-ज्योति" (जन-ज्ञान मासिक पत्रिका का विशेषांक, 400 वेदमन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह), जन-ज्ञान प्रकाशन, 1567 हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली, 5, मार्च, 1970 ई.स.

(5) "वैदिक आदर्श परिवार", रामप्रसाद वेदालंकार, (श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का चौबीसवाँ पुष्प), प्रकाशक-बहिन नरेन्द्र बब्बर, (आर्य), दिल्ली, द्वितीय संस्करण, मई, 1988 ई.स.

(6) "वैदिक साहित्य और संस्कृति", वाचस्पति गैरोला, चोखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1997 ई.स.

(7) "वैदिक-सूक्त मुक्तावलि", सम्पादक-डो. लम्बोदर मिश्र, हंसा प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005 ई.स.

****

डो. महाकान्त ज. जोशी
प्रमुख स्वामी आर्ट्स एन्ड सायन्स कोलेज,
कडी, जि. महेसाणा

Copyright © 2012 - 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat